Chap-7

सप्तम-अध्याय

सामाजिक सन्दर्भ में पारिवारिक परिवेश और साठोत्तरी कहानी

~~स्स्स्~~-सा समाज और व्यक्ति का अन्योन्याश्रित सम्बंध है। दोनों को एक दूसरे का पूरक माना जा सकता है। समाज समान चेतना वाले व्यक्तियों की सामूहिक संहति है, जिसका निर्माण विभिन्न परिवारों के द्वारा होता है। अत: व्यक्ति का हित परोक्ष रूप से समाज के हित में समाहित है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण उसके विभिन्न सामाजिक सम्बंधों के अनुरूप होता है तथा व्यक्ति के सामाजिक सम्बंध ही समाज का रूप निर्धारित करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि परिवार समाज की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण इकाई है। जहाँ वैयक्तिक चेतना तथा पारिवारिक संगठन के विविध आयामों से पारिवारिक परिवेश पर प्रभाव पड़ता है, वहाँ सामाजिक जीवन के प्रभाव की अनिवार्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि अन्तत: परिवार या व्यक्ति सामूहिक जीवन से कट कर नहीं रह सकता। सामाजिक जीवन की रीति-नीतियों, मान्यताओं और परम्पराओं के साथ व्यक्ति और परिवार के सामंजस्य से यह प्रक्रिया आरंभ हो जाती है।

व्यक्ति के समाज के प्रति कुछ ऐसे दायित्व रहते हैं जिन्हें सामाजिक व्यवस्था को सुगठित रूप देने के लिए निभाना आवश्यक होता है। सामाजिक व्यवस्था या संगठन की कुछ अपनी व्यवस्थाएँ, जीवन दृष्टि तथा उसके आधार पर जीवन चेतना विकसित होती है, जिसे सामाजिक मूल्य कहा जा सकता है। सामाजिक मूल्यों में भी समय के साथ-साथ परिवर्तन आता रहता है। जो इन मूल्यों के अनावश्यक या अप्रासंगिक अंशों को छोड़ता जाता है।

आधुनिक युग में सामाजिक परिवर्तनों ने अनेक परंपरागत मूल्यों को प्रभावित किया है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से समाज की आधारहीन मान्यताओं तथा अन्धविश्वासों को बहिष्कृत माना जाने लगा। परिणामस्वरूप अनेक गतिशील

जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा को बल मिला । परम्परागत अनेक अर्थहीन मूल्यों को यथा- बाल विवाह, विधवा विवाह का प्रतिरोध, सती प्रथा, दहेज प्रथा आदि कुरीतियाँ इसी कारण आज अपना अस्तित्व खो चुकी हैं, अथवा खोती जा रही हैं। इनके स्थान पर अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम-विवाह, पुनर्विवाह, विधवा-विवाह आदि के रूप में अच्छी मान्यताओं तज्जन्य मूल्यों को बल मिला है । साठोत्तर कहानियों ने इन बदलती स्थितियों को विशेष रूप से अंकित करके अपनी सामाजिक उपादेयता की किरणें संपूर्ण साहित्य में विकीर्ण की हैं। इनके अन्तर्गत सामाजिक संगठन, दहेज प्रथा, अर्थ-व्यवस्था तथा इतर विकृतियों की चर्चा करते हुए उन सामाजिक समस्याओं पर क्रमश: विचार किया जा रहा है जो पारिवारिक जीवन के परिवेश के निर्माण में योग देती हैं । सामाजिक सन्दर्भ में पारिवारिक परिवेश को अत्यधिक प्रभावित करने वाला पक्ष दहेज प्रथा से सम्बंधित है । अत: सर्वप्रथम इस पर विचार किया जा रहा है ।

१- दहेज प्रथा :

यह लक्ष्य किया जा चुका है कि पारिवारिक जीवन का आरंभ विवाह-संस्कार से होता है । वैवाहिक सम्बंधों में जहाँ नर-नारी के सम्बंधों एवं सन्दर्भों की अनेक जीवन-दृष्टियाँ कार्यशील होती हैं, वहाँ दहेज प्रथा भी चिरकाल से उसे प्रभावित करती आयी है । एक समय दहेज की प्रथा सामाजिक प्रतिष्ठा से एक सीमा तक जुड़ी हुई थी, किन्तु आज जीवन मूल्यों में परिवर्तन के फलस्वरूप व्यक्ति का दृष्टिकोण भले ही इससे हटा हो, किन्तु अर्थलोलुपता ने इस प्रथा को बरकरार बनाये रखा है । एक सीमित मात्रा में ही हम समाज में एतद्विषयक मान्यता को भिन्न रूप में देख पाते हैं। जो व्यक्ति केवल उपयुक्तता को ही वैवाहिक सम्बंधों का आधार मानते हैं वे अवश्य वैवाहिक

सम्बंधों के निर्णय में दहेज से प्रतिबद्ध होते नहीं देखे जाते, किन्तु अर्थ लोलुपता ऐसे लोगों में भी तद्विषयक अपेक्षा का निर्माण किसी सीमा तक कर सकती है ।

भारतीय समाज में विवाह एक धार्मिक संस्कार माना गया है । यों तो इसका उद्देश्य ऐसे वर-वधू की परस्पर उपयुक्तता की खोज है, जिसके आधार पर दोनों का भावी जीवन सुखद और समृद्धिपूर्ण व्यतीत हो सके, किन्तु दहेज प्रथा की विवशता के कारण धनहीन माता-पिता विवश होकर किसी प्रकार से भी अपनी कन्या के हाथ पीले करना अपना कर्तव्य व धर्म मानते हैं। आर्थिक विवशताओं के कारण जब कन्या को उचित वर नहीं मिल पाता तब **अनमेल** विवाह जैसी विकृतियों को बढ़ावा मिलता है । तृतीय अध्याय में लक्ष्य किया गया है कि दहेज प्रथा एक गंभीर समस्या है जिसे हिन्दू समाज का एक कलंक मानना चाहिए। इसके **उन्मूलन** के लिए सरकार ने अनेक अधिनियमों की स्थापना की, किन्तु फिर भी इस समस्या का उन्मूलन न हो सका । इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि धनी व्यक्ति अपनी अयोग्य कन्याओं के लिए अच्छे वर क्रय कर सकते लेते हैं जबकि निर्धन व्यक्ति अपनी योग्य कन्याओं का विवाह सम्पन्न कराने में असमर्थ रह जाते हैं । विवेकीराय की अनेक कहानियों में इस समस्या को अभिव्यक्ति मिली है । 'अखंड व्यर्थताओं की बंजर बारात में' कहानी में दहेज के नाम पर होनेवाली सौदेबाजी के सन्दर्भ में नायक का विचार है कि वह विवाहोत्सव है या सामाजिक जीवन की एक अज्ञात अदेख सड़ान्ध भरी भाग-दौड़ है । दूसरी ओर दहेज के लालची व्यक्ति की ढलती उम्र में भी विवाह की आकांक्षा 'बाप मोरे भइले कठबपवा' कहानी में दिखायी गयी है । इसी लेखक की 'बेटे की बिक्री' कहानी में दहेज पर करारा व्यंग्य किया गया है, जहाँ लड़की का पिता, माधवचन्द्र को अपना दामाद बनाने की लालच से उसे पढ़ा- लिखा

कर आर्थिक सहायता करके बड़ा आदमी बनाता है, तो दूसरी ओर माधवचन्द्र का पिता उसका विवाह अधिक दहेज देनेवाले एक इंजीनियर के घर पक्का कर देता है । साथही कहानी में समाज पर भी करारा व्यंग्य है`----शादी-ब्याह के मामले में अपने समाज में जो गन्दगी है उससे उन्हें बहुत घृणा है ।---- पहली लड़की की शादी में उन्होंने बड़े हुलास से दिल खोल कर खर्च किये----जिन लोगों की खुशी के लिए उन्होंने इस प्रकार पानी की तरह रुपया बहाया, उसे हाथ की मैल के समान फाड़-फाड़ उतारते गये, उन लोगों का मुँह अभी भी फूला ही रहा ---`।[१] `विद्रोह` कहानी में भी सुनील के पिता दहेज चाहते हैं सुनील सोचता है---- ये लोग उसे बेचना चाहते हैं। सौदा पट नहीं रहा है । पिता जी का कहना है,`---तिलक तो इतना आप लड़के को चढ़ा देंगे, मुझे क्या मिल रहा है ? मैं कहां से क्या खर्च करूं ?---तो साहब, सारा व्ययबोझ आपके सिर । दहेज की लिस्ट के अतिरिक्त नाच, बाजा, शामियाना, टेंट, रोशनी, बिछौना, बारात आने-जाने की सवारी, दूल्हे की पृथक कार आदि का सब प्रबंध आपको करना है ---` इस पर माता जब पिता को समझाने का प्रयत्न करती है तब वे कहते हैं`--- हाँ, इतना नहीं होगा तो रिश्ता मंजूर कैसे होगा ? -` यहाँ तक कि इसी कहानी में समाज की बाल-विवाह जैसी बुराई को भी अंकित किया है कि कुछ व्यक्ति छोटेपन में ही विवाह निश्चित कर देते हैं । दुर्भाग्यवश लड़के की मृत्यु विवाह से पहले ही हो जाये तब लक्ष्मी जैसी पूजी जानेवाली लड़की भी उसी क्षण घर बैठे कुलच्छनी बन जाती है ।`---सुनील के कानों में उसकी मां के शब्द झनकने लगते हैं ---कुलच्छनी ससुरे के भतार चबाय के नैहर में डेरा डाले है । अब के के खाई ?---ओह, यह मां है, अपनी बेटी के प्रति ऐसी क्रूर---कठोर ? कोई व्यक्ति जिसे लड़की बिल्कुल नहीं जानती थी, अचानक उसका सर्वस्व होने की मान्यता पाने के बाद मर गया, तो इसमें उस लड़की का क्या दोष है ?---`[२]

यह सत्य है कि दहेज प्रथा व बाल-विवाह की अभिव्यक्ति करती हुई

साहित्यिक कहानियाँ अपेक्षाकृत कम हैं । इन कहानियों में दहेज का खुला रूप अधिक चर्चित न होकर उसके दूसरे रूप व परिणाम के रूप में मिलता है । यथा-धन की अपर्याप्तता में लड़की का रिश्ता ही नहीं हो पाता है । उषा प्रियंवदा की 'कच्चे धागे' कहानी में कुन्तल की यही स्थिति है । कुन्तल एक साधारण परिवार के उमाशंकर की पुत्री है जो अपने पड़ोसिन के भाई की ओर आकृष्ट व मुग्ध होती है । पड़ोसिन का कहना था कि भाई के लिए वे कुन्तल जैसी सुन्दर, सुशील व घर के कार्यों में दक्ष कन्या चाहते हैं परन्तु जब गजाधर चाचा पड़ोसिन से कुन्तल के विषय में बात करते हैं तब धन की माँग खुले तौर पर न होकर परोक्ष रूप में रहती है । यहाँ तक कि धनी व्यक्तियों पर व्यंग्य भी किया है । '---अकेला भाई है हमारा, चार बहनों में, हमें और कुछ नहीं चाहिए, रुपया पैसा ईश्वर की कृपा से है, बस लड़की खूबसूरत हो, रंग साफ, नाक-नक्श सुन्दर हों । वैसी लड़की अबे हो तो हमें इनकार नहीं है । पर उमाशंकर से माफी माँग लीजिए, मजबूरी है ---' ।[3] इस प्रकार अनेक कन्याएँ कुंठाओं का शिकार हो जाती हैं । कुछ दूसरे रास्तों से धनार्जन कर स्वयं को प्रतिष्ठित करना चाहती हैं तो कुछ वेश्या का रूप भी अपना लेती हैं । अनेक लड़कियाँ अविवाहित रहने को ही विवश हो जाती हैं ।

अविवाहित लड़कियों का दूसरा रूप भी इन कहानियों में सामने आया है कि वे अपने माता-पिता के समक्ष, दहेज की विवशता के कारण, स्वयं निरंतर पढ़ती ही चली जाती है, जिससे उनकी विवाह के उपयुक्त अवस्था निकल जाती है। ममता कालिया की 'फर्क नहीं' कहानी की 'विमला' तथा 'मैं' पात्राएँ इन्हीं स्थितियों से आक्रान्त हैं । 'कैसे-कैसे मंजर' कहानी की लड़कियाँ पितृहीन होने के कारण आर्थिक अभाव से आक्रान्त हैं और विवाह के स्वप्न पूर्ण करने की असमर्थता में कुंठित होती जाती हैं । इस प्रकार दहेज प्रथा अनेक समस्याओं

को जन्म देती दिखाई देती है । इसी कारण इन कहानियों में प्रायः व्यक्ति अर्थार्जन में अधिक प्रयत्नशील दृष्टिगोचर होता है । कहा जा सकता है कि - समाज की अर्थ-व्यवस्था इन सभी बातों को प्रभावित करती है । अतः इस पर स्वतंत्र रूप से विचार कर लेना आवश्यक है ।

२- अर्थ व्यवस्था :

आर्थिक संकटों से ग्रस्त व्यक्ति की स्थिति आज अत्यन्त गम्भीर बनती जा रही है । यही कारण है कि वह अर्थ लोलुपता तथा स्वार्थ प्रवृत्ति से अत्यधिक प्रेरित होता जा रहा है । उसने नैतिकता- अनैतिकता के बीच का रास्ता निकालने का प्रयत्न किया है और इस प्रयत्न में वह इन दोनों क्षेत्रों में से जिसके अधिक निकट होता है उसे न्यायोचित मानने लगता है । इसके कारण एक ओर सामाजिक स्तर पर अनेक भ्रष्टाचारों को बढ़ावा मिलने लगा है तो दूसरी ओर परम्परा से चले आ रहे परंपरागत आदर्श आज कल्पनाओं की वस्तु बन कर रह गये हैं । राजनैतिक क्षेत्र भी इस प्रवृत्ति से अछूता नहीं कहा जा सकता जहाँ प्रजा वोट मात्र बनकर रह गयी है । वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विकास के परिणाम से जीवन के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है । एक ओर धार्मिक चेतना का ह्रास हो रहा है तो दूसरी ओर आधुनिक मानसिकता ने समाज को एक ऐसे मोड़ पर ला दिया है जहाँ पाश्चात्य उन्मुक्तता व आधुनिकता को ही व्यक्ति स्वेच्छा से स्वीकार करके उसे अपना जीवन मूल्य मान रहा है ।

उपर्युक्त मानसिकता से जुड़ी हुई निम्न और मध्यम वर्ग की आर्थिक वस्तुस्थिति भी समाज-जीवन तथा साथ ही पारिवारिक परिवेश को गहराई से प्रभावित करती है । एक ओर अर्थाभाव दूसरी ओर ऊपरी शान शौकत या

प्रदर्शन की मनोवृत्ति के फलस्वरूप समाज में धन का महत्व सर्वोपरि हो चुका है । अत: अर्थार्जन क ही सामाजिक जीवन का मुख्य ध्येय बनना उक्त स्थिति में स्वाभाविक ही है । यह सर्वविदित है कि सामाजिक जीवन का स्वरूप उसकी आर्थिक व्यवस्था पर विशेष रूप से आधारित रहता है । दूसरे शब्दों में आर्थिक सम्पन्नता ही सामाजिक संगठन और सामाजिक चेतना को गति प्रदान करती है। तृतीय अध्याय में लक्ष्य किया जा चुका है कि साठोत्तर काल में सरकार द्वारा आर्थिक संपन्नता के अनेक आश्वासन, मिलने पर भी सामान्य व्यक्ति की आर्थिक स्थिति अपरिवर्तनशील ही बनी रही । इसके कारण विकसित आर्थिक समस्याओं से संयुक्त, जीवन-स्थितियों का निरूपण अनेक साठोत्तर कहानियों में मिलता है ।

प्रत्येक समाज में मध्यमवर्ग अपेक्षाकृत अधिक संघर्षरित रहता ह आया है । आर्थिक अभावों से ग्रस्त आज का मध्यवर्गीय समाज एक और नगरीय परिवेश की फैशन परस्ती, ऊपरी शान-शौकत व आधुनिकता की होड़ में आगे बढ़ना चाहता है । वह चाहता है कि अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित और निम्न वर्ग से वह श्रेष्ठतर दिखायी पड़े और इसकी अनुभूति समाज को हो । इसके साथ ही साधनों की न्यूनताओं के बावजूद भी सामाजिक प्रतिष्ठा में वह उच्चवर्ग के समकक्ष गिना जा सके । सीमित साधन-स्रोतों की इस परिस्थिति के साथ ही वस्तुओं की दिनों-दिन बढ़ती हुई कीमतें तथा उक्त आकांक्षा की पूर्ति में अपेक्षित अत्यधिक व्यय आदि के कारण वह आर्थिक संकटों में फँसता जाता है । यहाँ तक कि आर्थिक अभाव के कारण शिक्षा का प्रश्न भी जटिलतम बनता जा रहा है । दूसरी ओर बेकारी की समस्या बढती ही जाती है जिससे आगे चलकर उसी के परिवार की आगामी पीढ़ी ही नहीं प्रभावित होती, बल्कि वह स्वयं भी प्रभावित होता है । ऐसी स्थिति में या तो इस वर्ग की महत्त्वाकांक्षाएँ अधूरी ही रह जाती हैं, अथवा वह उनकी पूर्ति के लिए अवांछनीय प्रवृत्तियों की ओर

उन्मुख हो जाता है । किन्तु यह भी आवश्यक नहीं है कि उस दिशा में उन्मुख प्रत्येक व्यक्ति को अपेक्षित सफलता मिल ही सके । अत: बेकारी एक ओर सामाजिक विघटन का सूचक कही जा सकती है तो दूसरी ओर मध्यमवर्ग व निम्न वर्ग को अपंग बना रही है । इसका प्रत्यक्ष प्रभाव परिवार पर पड़ता है और व्यक्ति परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करता है । कभी वह कुण्ठा ग्रस्त होता है तो कभी मानसिक तनावों से घिर जाता है । फलत: उसके जीवन में घुटन, विद्रोह व असंतोष पनपने लगता है । आर्थिक पूर्ति के लिए अधिक श्रम, चोरी, अनुचित उपायों से धनार्जन तथा अनैतिक आचरण इसके अवश्यम्भावी परिणाम हैं जिनसे अनेक सामाजिक समस्याएँ,उभर कर आती हैं । इन अनैतिक प्रवृत्तियों के कारण सामाजिक जीवन विकृत होने के साथ-साथ परिवार तथा व्यक्ति की प्रतिष्ठा को भी आघात पहुँचता है ।

उपर्युक्त सामाजिक सन्दर्भों से प्रभावित पारिवारिक जीवन की स्थितियों का आकलन हमारे आलोच्य युग की अनेक कहानियों में हुआ है । 'बी0आई0पी0' (गिरिराज किशोर), 'गिरगिट' (प्रभाकर माचवे) ऐसी कहानियाँ हैं जहाँ व्यक्ति आदर्शों की दीवारें मसक झाँकता है । इनमें मंत्रियों तक के काले कारनामों का रहस्य खुला है । कहना उचित ही होगा कि इन कहानियों में राजनीतिक स्तर पर इस भ्रष्टाचार में चपरासी, क्लर्क, अफसर ही क्या नेता भी पूर्ण रूप से जुड़े दिखाई देते हैं । इसीलिए इन कहानियों ने देश की आर्थिक व्यवस्था को तोड़ने का प्रयास किया है । शरदजोशी की 'जीप पर सवार इल्लियाँ' तथा 'सरकार का जादू और जादू की सरकार' कहानियाँ इसी स्थिति की द्योतक हैं, जहाँ एक ओर सार्वजनिक क्षेत्र में सरकारी पैसे का घाटा आ रहा है तो दूसरी ओर व्यक्ति की निजी आर्थिक दशा सुधरती जा रही है । मन्नू भंडारी की 'मैं हार गयी' कहानी में लगता है कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक चरित्रों

में कहीं ताल-मेल नहीं रह गया है । दूसरी ओर हरिशंकर परसाई ने 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में राजनीति, चुनाव, भ्रष्टाचार, जाति-पाँति, दलबदल सिद्धान्त पर करारा व्यंग्य किया है । हमारा प्रतिपाद्य पारिवारिक जीवन से है । अतः प्रस्तुत विवेचन को हम यहाँ केवल पारिवारिक परिवेश तक ही सीमित कर रहे हैं ।

उपरिनिर्दिष्ट अवांछनीय प्रवृत्तियों का लक्ष्य अनेक कहानियों की नारियाँ भी बनी हैं । नारी के अवांछनीय कार्यों के कार्य-क्षेत्र भी अलग-अलग हैं । कुछ नैतिकता व उसके पुरुषों से सम्बंध स्थापित करने से हैं जिन पर आगे विचार किया जायेगा । यहाँ केवल आर्थिक सन्दर्भों से विवश नारी तद्विषयक इन प्रवृत्तियों पर विचार किया जा रहा है । यह ध्यातव्य है कि प्राचीन काल से आज तक नारी सामाजिक कारणों से वेश्या बनने के लिए विवश होती आयी है । आधुनिक समाज में वेश्या नारी का रूप परिवर्तित होकर 'सोसाइटी गर्ल' के रूप में अधिक प्रचलित होता जा रहा है । अपने को इस रूप में देखकर नारी एक सीमा तक अपनी गिनती आधुनिक फैशन में अन्तर्गत करती है तो दूसरी ओर आधुनिकता से सम्बंधित फैशन, सैर सपाटे, कलचित्रों की तड़क-भड़क चाहती है। ~~वहे-दूसरी-ओर-आधुनिकता-से-सम्बं~~ इस मनोरंजन में अर्थ परमावश्यक होता है जो उसे अपने शरीर का सौदा करने हुए शब्दों में सोसाइटी गर्ल बनाने में सहायक होता है । एक ओर आज के समाज में अपने-अपने औद्योगिक संस्थानों के विज्ञापनों के लिए मॉडल बनाने का फैशन है तो दूसरी ओर ये नारियाँ इससे अपनी आर्थिक दशा सुधारती हैं । 'काला रजिस्टर' (रवीन्द्र कालिया), 'फटा हुआ जूता' तथा 'रोजगार' (मोहन राकेश) में जहाँ मॉडलिंग आदि कार्यों में स्वयं को बेचती हुई नारी है वहाँ दूसरी ओर अपनी शान-शौकत के लिए अपनी युवा बेटियों का सौदा 'काला बाप -गोरा बाप' (महीप सिंह) व 'मरुस्थल' (मोहन राकेश) कहानियों में हुआ है । कहीं-कहीं यही प्रवृत्ति अपनी

स्वार्थपूर्ति के लिए भी प्रयोग की जाती है। 'काला रजिस्टर' (रवीन्द्र कालिया) में अफसर को पटाने का शौक तथा ऐसे सेक्स सम्बंध को भी उभारा है। इनकी एक पात्र बुआ को आज के इस परिवर्तित समाज का अंग बनाया गया है जिसके कि दफ्तर पहुंचते ही बॉस केबिन में एकान्त चाहता है। 'फौलाद का आकाश' (मोहन राकेश) कहानी में पिता अपनी नौकरी की सेवा अवधि के विस्तार (Extension of Service) के उद्देश्य पूर्ति के लिए अपनी बेटी को अफसर के पास पहुँचा देता है तो 'छिपता हुआ दुःख' (हिमांशु जोशी) में पति स्वयं अपनी पत्नी को अफसर के पास भेजता है।

उपर्युक्त कहानियों में यह लक्ष्य किया जा सकता है कि इनके पारिवारिक परिवेश महानगरीय सामाजिक सन्दर्भों में हैं। मॉडल और सोसाइटी गर्ल बनने की प्रवृत्ति के अतिरिक्त नारी के सौंदर्य का निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए प्रयोग निश्चय ही पूर्वनिर्दिष्ट पारिवारिक जीवन दृष्टि को प्रभावित करता है। इनमें परिवार मात्र उसके सदस्यों का बाहरी ढाँचा ही रह गया है, कोई आन्तरिक सम्बंध सूत्र इसमें खोजना अनावश्यक ही है। अतः यह कहा जा सकता है कि परिवार के स्वरूप में तीव्रता से अन्तर आ रहा है। एक ओर परिवार विघटित हो रहे हैं तो दूसरी ओर पारिवारिक सदस्यों के सम्बंधों में परिवर्तन आ रहा है जिनका किंचित उल्लेख सामाजिक सन्दर्भ के अन्तर्गत करना आवश्यक है।

३-सामाजिक परिवेश और परिवार का स्वरूप :

पूर्व विवेचित अध्ययन-बिन्दुओं के प्रकाश में परिवार सामाजिक संगठन का मूलाधार होने के कारण इसमें व्यक्ति के स्थान पर समष्टि की चेतना प्रधान रहती है, परन्तु अनेक सामाजिक अव्यवस्थाओं के कारण परिवार का स्वरूप

जो परंपरा से संयुक्त परिवार के रूप में था अब विघटित होकर एकाकी परिवारों का स्थान लेता जा रहा है किन्तु प्रस्तुत अध्याय में निर्दिष्ट तथ्यों से इस स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है कि आलोच्य अनेक कहानियों के एकाकी परिवार भी अन्दर से टूटे हुए हैं। साठोत्तर कहानियों में विघटित एकाकी परिवारों के चित्र भी प्रायः उभर कर आये हैं। सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत जो आधुनिकता के प्रति उत्साह बढ़ा है, उसने परिवार को सुसम्बद्ध बनाने वाली परंपरा को इन कहानियों में निर्मोक की भाँति उतार कर फेंक दिया है। उदाहरणार्थ 'वापसी' कहानी के गजाधर बाबू की पत्नी तथा बच्चे अपने ही संचालक तथा प्रतिपालक के प्रति नैतिक कर्तव्य को छोड़ बैठते हैं और यह एकाकी परिवार बाहर से चाहे न टूटा हो अन्दर से पूर्ण-तया विघटित हो चुका है। ज्ञानरंजन कृत 'पिता' कहानी के पिता की स्थिति भी घर के निर्वासित सदस्य जैसी ही है। 'शेष होते हुए' कहानी के घर में भाभी, नन्द, देवर आदि की अपनी अलग-अलग सारी व्यवस्था रहती है। फलतः छोटे से परिवार के सभी सदस्य उससे छिटक कर अलग से प्रतीत होते हैं। 'पनडूब बंगला' कहानी में भी एक पीढ़ी का दूसरी पीढ़ी के साथ झगड़ा न सिर्फ दाल रोटी का है वरन् सभ्यता के उपकरणों के अंगीकरण और स्वीकृति की अनेक समस्याएँ हैं। दीप्ति खंडेलवाल की 'वह तीसरा' कहानी संग्रह की अधिकांश कहानियाँ जिनमें 'प्रेत' कहानी विशेष रूप से इसी संघर्ष को उजागर करती है जहाँ परिवार बिखरने पर विवश हो जाते हैं। 'दायरा' (रामकुमार) कहानी में परिवार के सदस्य अपनी वैयक्तिकता के कारण अपने निजी दायरे बना लेते हैं। 'बिरादरी बाहर' कहानी में आधु-निकता से सामंजस्य स्थापित न कर सकने के कारण पुरानी मान्यता वाले पिता सामाजिक संबंधों के स्थान पर स्वयं को पारिवारिक बिरादरी से कटा हुआ अनुभव करते हैं। 'छत बनाने वाले', 'जिन्दगी जलती है', 'पुरानी मिट्टी : नये ढाँचे' इसी विषय की कहानियाँ हैं। अतः स्पष्ट है कि एक ओर संयुक्त

परिवार प्रणाली का विघटन हो रहा है तो दूसरी ओर एकाकी परिवारों के व्यक्तियों के परस्पर सम्बंधों में अन्तर आ रहा है । इससे सम्बंधित कहानियाँ जैसे 'एक नाव के यात्री' (शानी), 'सन्नाटा' (महीपसिंह), 'कटी हुई तारीखें' (अन्विता अग्रवाल), 'क्वार्टर' (मोहन राकेश), 'सम्बंध' (ज्ञानरंजन), 'रिश्ते' (पानू खोलिया), 'तट से छूटे हुए' (सुरेश सिन्हा) , 'मायादर्पण' (निर्मल वर्मा) आदि को लिया जा सकता है, जिनके कुछ पक्षों पर विचार किया जा चुका है ।

आधुनिकता के अन्तर्निवेश का अधिक गहरा रंग 'एक नाव का यात्री' कहानी में प्रस्तुत हुआ है । इसमें विदेश से आये हुए पुत्र और पुत्रवधू परिवार में परायेपन की अनुभूति करते हैं। 'तट से छूटे हुए' कहानी आधुनिक जीवन दृष्टि की यथावत अभिव्यंजना है, जिसमें दूर शहर में रहने वाला पुत्र माता-पिता को अपने विवाह की सूचना मात्र देना ही पर्याप्त समझता है । 'सम्बंध' कहानी पारिवारिक सदस्यों के पूर्णतया बिखराव को चित्रित करती है । यहाँ तक कि बड़ा भाई छोटे भाई द्वारा आत्महत्या की धमकी से दुःखी न होकर उसे समस्याओं का समाधान मानता है । माता-पिता के साथ सन्तति के सम्बंधों में अलगाव की भावना इन कहानियों में प्राय: मिलती है । ज्ञानरंजन की 'सम्बंध' कहानी में नायक भाई से तो अलग होता ही है माँ के लिए सोचता है कि'---एक लम्बे समय तक जो स्त्री मेरे लिए माँ थी अब कभी-कभी ही माँ लगती है या माँ का भ्रम'।[4] तो दूसरी ओर माँ बेटे को परंपरागत रूप में देखती हुई भी दृष्टिगोचर होती है । 'मुक्ति' (विजय चौहान) कहानी की माँ कहती है'---वह दिन भूल गया जब बाहर से लौटकर आता मेरी गोदी में घुस जाता था---आज कुछ भी बताने की जरूरत नहीं समझता---'।[5] गिरिराज किशोर की 'रिश्ता' कहानी में माँ का दूसरा रूप है, जहाँ वह अपने बेटे से अधिक अपनी

कामवृत्ति को महत्व देती है`---एक ओर एक अधिक उम्र का व्यक्ति है जो पुत्र रक्षित विधवा माँ से पुनर्विवाह के लिए तैयार है। दूसरी ओर युवा व्यक्ति है जो पुत्र-रक्षित विधवा माँ का ही वरण कर सकता है--- और माँ `उनकी` ने रामचारी (बेटे) की ओर देखा। वह गर्दन झुकाए चुपचाप खड़ा था---`[6] वह युवा के साथ चली जाती है। इन्हीं सम्बंधों के अलगाव की भावना से माँ की स्मृति भी पुत्र को माँ की जगह चिता देखकर ही आती है।[7] इस प्रकार माँ की परम्परागत प्रतिमूर्ति में आज बेटा एक ऊब का अनुभव करता है जहाँ वह माँ के चेहरे को देखना भी नहीं चाहता`--- मैं हमेशा बदमी, और पराजित व्यक्ति की तरह उम्मीद करता रहता हूँ---- वह चेहरा (माँ का) जो दरवाजा खोलता है कभी न मिले ---।[8] यहाँ तक कि उसे माँ के स्वस्थ होने की अपेक्षा उसके मरने की प्रतीक्षा रहती है।[9] कृष्णा बलदेव वैद की कहानी `ऊपर मैं नाव---` में देसराज आर्थिक स्थिति से परेशान होकर माँ से कहता है ---- माँ, मुझे क्षमा करो, क्यों दुःखी करती हो ---`।[10] दूसरी ओर `पूर्वार्ध` कहानी में बेटा अस्वस्थ माँ का ध्यान न रख अपने दफ्तर चला जाता है।[11]

माता के साथ-साथ सन्तति का व्यवहार प्रायः पिता के साथ भी लगभग ऐसा ही है जहाँ पुत्र विवश होकर पिता से अलग रहना चाहता है। `पूर्वार्ध` (कामतानाथ), `आधुनिक` (दीप्ति खंडेलवाल) कहानियाँ इसी स्थिति का द्योतन करती हैं। आधुनिक सुविधाओं को घर में देख कर पिता प्रायः उनसे चिढ़ते हैं `--- दादा भाई ने अपनी पहली तनख्वाह से गुसलखाने में बड़े उत्साह के साथ एक खूबसूरत शावर लगवाया--- पिता ने जब कोई उत्साह नहीं प्रकट किया तो दादा भाई मन ही मन काफी निराश हो गये---`[12] तो कहीं पिता पुत्र के प्रेम-विवाह में बाधक बनता है। रमेश बक्षी की `पितृ ऋण` कहानी इसी प्रकार की है यहाँ तक कि `उत्तर` कहानी का पुत्र जब अपने विवाह

की इच्छा पिता को बताता है तब पिता को लगता है जैसे उनका पुत्र कोई छीन रहा हो । यही स्थिति 'कील' (महीप सिंह) कहानी के पिता की है जो मोना के लिए किसी लड़के को उपयुक्त वर घोषित नहीं करते । फलत: वह पिता से कटने लगती है । अत: प्रेम, विवाह तथा अहं जैसी प्रवृत्तियाँ हैं जो सम्बंधों में अलगाव लाकर व्यक्ति को कुंठित तथा विद्रोही बनाती हैं । ऐसी ही स्थितियों से 'करीब घर' (दीप्ति खंडेलवाल) कहानी में पिता कुंठित व पुत्र विद्रोही बनता है । यहाँ तक कि आज जागृत नयी पीढ़ी इस सम्बंध को अस्वीकार करने लगी है '--- मुझे पिता नहीं चाहिए, इनको मैं रिश्ता नहीं कहती हूँ, अंकुश कहती हूँ----।'[१३] अत: स्पष्ट है कि ये कहानियाँ पारिवारिक - जीवन के भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के बिखराव को रूपायित करती हैं जिसके लिए व्यक्ति स्वातंत्र्य , अहंमन्यता तथा पीढ़ी संघर्ष विशेष रूप से उत्तरदायी है ।

कुछ कहानियों में इसके विपरीत स्थिति भी मिलती है जहाँ व्यक्ति एकाकीपन से ऊब कर परिवार का सान्निध्य चाहता है । 'कगार पर' (दीप्ति खंडेलवाल) कहानी में बहू अपनी सास को अपने पास बुलाना चाहती है तो 'छुट्टी का एक दिन' (अकुलेश परिहार) कहानी में पुत्र व बहू अपनी आय का कुछ भाग बचा कर पिता के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं । इस प्रकार की स्थितियाँ अपेक्षाकृत कम अथवा नगण्य कही जा सकती हैं । इतना अवश्य है कि व्यक्ति एक सीमा तक परिवार के प्रति संवेदना रखता है । यही कारण है कि उत्सव, जन्म, मरण पर वे एक साथ सम्मिलित होने का प्रयत्न करते हैं । इसी सन्दर्भ में मन्नू भंडारी ने अपने वक्तव्य में कहा है कि कुंठा, घुटन,

तनाव और संत्रास की स्थितियाँ जो आज के साहित्य का केन्द्र बिन्दु बन रही हैं वे हमारे समाज की न होकर पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण का परिणाम कही जा सकती है। यही कारण है कि हम उस अकेलेपन से ग्रसित नहीं हैं। जो विदेशों में व्याप्त है। भारतीय परिवार आज भी मानसिक व भावनात्मक स्तर पर संयुक्त परिवार की मानसिकता से एक सीमा तक जुड़े हुए कहे जा सकते हैं।[२४] इनमें अलगाव की भावना आर्थिक समस्याओं ने उत्पन्न कर दी है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आज परिवारों में एकता, प्रेम-भावना आदि का ह्रास होने से एक सीमा तक पारिवारिक चेतना का ह्रास हो रहा है। एकाकी परिवारों में भी आत्मीयता बोध का स्थान अधिकांशत: वैयक्तिकता ने ले लिया है। फलस्वरूप स्त्री-पुरुषों के सम्बंधों में अन्तर आया है। पहले कहा जा चुका है कि नारी की स्थिति - परिवार की धुरी के समान है। आज वह शिक्षित होकर आधुनिक बनने की आकांक्षिणी है तो दूसरी ओर उसमें अपने व्यक्तित्व के प्रति जागरूकता, स्वतंत्रता, अहंवादिता तथा वैयक्तिकता व्याप्त होती जा रही है। इसके कारण अनेक वैवाहिक समस्याएँ उभर कर आयी हैं। ये स्थितियाँ समाज के नैतिक मूल्यों को बहुत गहराई तक ध्वस्त कर चुकी हैं साथ ही नये मूल्यों का आधार भी बनती जा रही हैं जिन्हें हम पूर्ववर्ती अध्याय में स्पष्ट कर चुके हैं। पाश्चात्य जीवन दृष्टि के कारण आधुनिकता के समावेश ने जो हमारे जीवन तथा कहानियों में उसकी अभिव्यक्ति पर प्रभाव डाला है उसके सन्दर्भ में मन्नू भंडारी का उपर्युक्त कथन यहाँ स्वतंत्र रूप से विचारणीय है।

४-पाश्चात्य जीवन दृष्टि और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण :

आधुनिक जीवन किस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित हुआ है इसे हम सैद्धांतिक रूप से चतुर्थ अध्याय में दृष्टिगत कर चुके हैं। पारिवारिक जीवन को स्वतन्त्रतादायक दृष्टिकोण किस सीमा तक तोड़ता है यह कहानियों के उपर्युक्त सन्दर्भों से स्पष्ट है। यहाँ उसके मनोवैज्ञानिक पक्ष पर विचार किया जा रहा है। आज के जीवन में एक ओर नर-नारी के प्रेम-सम्बन्ध बदले हैं तो दूसरी ओर काम सम्बंधों में अन्तर आया है। फलस्वरूप अनेक मनोवैज्ञानिक जटिलताएँ व्यक्ति के मन में प्रवेश कर चुकी हैं। यही कारण है कि आज का व्यक्ति बुद्धिवाद से प्रेरित होकर प्लैटोनिक प्रेम पर विश्वास न करके या तो प्रेम को सहज स्वाभाविक आकर्षण के रूप में स्वीकार करता है, अथवा कहीं-कहीं स्वार्थ प्रेरित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इसका प्रयोग करता है। ऐसे प्रयत्नों में वह कहीं सफल हो जाता है तो कहीं असफल। असफलता में वह मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से उत्पन्न कुंठा, हताशा जैसी अनेक ग्रंथियों का शिकार हो जाता है।

'कितनी कैदें' (मृदुला गर्ग) कहानी में पति मनोज से विमुख पत्नी मीना अपनी अवचेतनाओं में कुंठाग्रस्त होकर कैद होती जाती है। मनोज के प्रति अनेक हीन भावनाएँ उसके मन में बनती हैं जो स्थिति को जटिलतर बना कर पत्नी को कुंठाग्रस्त करती हैं। उपेक्षा भरी पत्नी अनायास एक दिन लिफ्ट में पति के साथ फँस जाती है। इस क्षण मनोज अपनी पत्नी पर बलपूर्वक नियंत्रण कर लेता है और पत्नी की अवचेतन की गाँठें खुल जाती हैं। ऐसी अनेक स्थितियों में जब पति-पत्नी के मध्य लगाव नहीं रहता तब अलगाव से एक ऐसा

काम्प्लैक्स(Complex) उत्पन्न होता है जिससे एक रिक्तता बनती जाती है। दीप्ति खंडेलवाल की 'क्षितिज' तथा 'ये दूरियाँ', मन्नू भण्डारी की 'बाँहों का घेरा' कहानियाँ इसी रिक्तता की बोझ हैं। इनमें तीसरे व्यक्ति का प्रवेश एक त रिक्तता की पूर्ति के लिए स्वाभाविक बन जाता है। यहाँ नारी दोहरी जिन्दगी जीने वाली बन जाती है। इस स्थिति का वर्णन दीप्ति खंडेलवाल ने इस प्रकार किया है'---'राह', 'वह तीसरा'--- कभी सूक्ष्म स्तर पर अहं होता है, कभी 'अविश्वास', कभी 'अस्वीकार----- कभी स्थूल स्तर पर राह 'भूख की भूख' ही होता है, कभी जड़ताओं का 'प्रेत' --- कभी 'कोई जमीन नहीं' का निर्मम यथार्थ ----- और कभी---'वह' का 'वह' जो अपनी नारी आधुनिकता के बावजूद भी न होश में जाग पाता है और न चैन से सो पाता है ---- वह जैसे निरन्तर लड़ता रहता है अपने आप से एक लड़ाई----- हार वह मानता नहीं ----- जीतना उसे आता नहीं----।'[१५] स्पष्ट है कि तीसरे व्यक्ति के आगमन से मन:स्थितियों पर कितना प्रभाव पड़ता है। यही प्रभाव दीप्ति खंडेलवाल के 'वह तीसरा' कहानी संग्रह की संगृहीत कहानियों में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त है। मन्नू भंडारी ने तीसरे के आगमन की एकनिष्ठता को आत्मसात कर उसे तर्क द्वारा 'ऊँचाई' कहानी में अभिव्यक्त किया है। दीप्ति खंडेलवाल की 'सन्धिपत्र' कहानी में शोभा अपने पति से कहती है'--- मेरे एक मात्र पुरुष तुम नहीं हो रोहित, लेकिन शायद----शायद 'मेरे पुरुष' तुम्हीं हो ---' दूसरी ओर पति भी इस तीसरे व्यक्ति से ग्रसित है और कहता है'--- मेरी एक मात्र नारी तुम नहीं हो शोभा, किन्तु 'मेरी नारी' शायद तुम्हीं हो---।'[१६] इसकी चरम सीमा 'निश्चय' (कुलभूषण) कहानी में मिलती है जहाँ उर्मी विवाह पूर्व जिस जगदीश से शारीरिक सम्बंध स्थापित करती है उसी से विवाह करना अपनी दूसरी बड़ी भूल मानती है। 'एक विवाह और'(मृदुला गर्ग), 'दो कहानियों के बीच',

'गन्ध' (मणिप्रभा शास्त्री) कहानियाँ भी इन्हीं बदलती परिस्थितियों की द्योतिका कही जा सकती हैं। 'गंध' कहानी की नारी दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करने का तर्क काम अतृप्ति स्वीकार करती है'--- जब यह सब कहाँ चाहती थी, पर जब घर का कुँआ बिल्कुल सूख जाये तो आदमी एकदम प्यासा तो मरने से रहा। कितनी बार सोच चुकी हूँ स्त्रियों के लिए ------------ पुरुष वैश्यालय क्यों नहीं हुए, जहाँ वे भी स्वतंत्रता से जा सकतीं। पुरुष और स्त्री की नैतिकता के मानदण्डों में अन्तर क्यों? स्त्री के मन नहीं है? उसका अरण्य नहीं है। --'[१७]

विवाहित नारी भी पूर्ण पातिव्रत धारण कर पति के प्रति समर्पित रह कर अनायास तीसरे पुरुष का सान्निध्य आकर्षित समझती है। 'अपरिचित' कहानी की पत्नी अपने पति के प्रति लगाव रखने पर भी कहीं न कहीं अलगाव को अपना लेती है। 'राजा निरबंसिया' कहानी की नारी पति के प्रति पूर्ण समर्पित है किन्तु पति के प्रति एकनिष्ठा व उसकी जिन्दगी बचाने के लिए ही वह बचनसिंह के प्रति समर्पित होती है। पति की नपुंसकता का बोध करके बचनसिंह से पुत्र प्राप्ति करती है। ये स्थितियाँ इन कहानियों में कहीं प्रसन्नता प्राप्ति की सूचक होती हैं, अन्यथा कुंठाओं को ही प्रायः जन्म देती हैं। उक्त कहानी की चन्दा भी स्पी कुंठा से ग्रस्त होकर गाँव में दूसरे के घर बैठना चाहती है। 'धिराव' (महीपसिंह) कहानी में भी पहले पति की छाया के रूप में उत्पन्न कुंठाएँ व्यक्ति को सहज जीवन यापन नहीं करने देतीं। अतः कहा जा सकता है कि ये सभी मनोग्रंथियाँ व्यक्ति के पारिवारिक विकास तथा परोक्ष रूप में सामाजिक विकास में अवरोध बनती हैं। यहाँ तक कि अनेक मनोवैज्ञानिक जटिलताओं से शिकार हुआ व्यक्ति समाज से पूर्ण सामंजस्य स्थापित नहीं कर

कर पाता और अनेक विकृतियों को जन्म देकर भिन्न-भिन्न व्यवहार करता है ।

मनोविश्लेषणों के अनुसार अनेक अशिष्ट व्यवहारों से समलैंगिक सम्बंध तथा विकृतियों का जन्म होता है, जिन्हें स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में एक सीमा तक चित्रित करने का प्रयास किया गया है । उपर्युक्त सभी पक्षों के सन्दर्भ में 'प्रतीक्षा' (राजेन्द्र यादव), 'छोटे घेरे का विद्रोह' (मानी), 'आधार' (दीप्ति खंडेलवाल), 'पगडंडी' (गिरिराजकिशोर), 'सम्बंध' (ज्ञानरंजन), 'सत्ताइस साल की उमर तक' (रवीन्द्र कालिया) आदि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है । 'प्रतीक्षा' कहानी की गीता और नन्दा आपस में समलैंगिक सम्बन्ध स्थापित करती हैं तो 'छोटे घेरे का विद्रोह' कहानी की मिसेज शुक्ला किरायेदारों के समक्ष मात्र पेटीकोट-ब्लाउज पहन कर घूमती हैं उनके प्रति शरीर समर्पित करने का भाव दृष्टिगोचर होता है । यह मेजर की विकृत भूमिका ही कही जा सकती है । 'बुढापे की गंध' (जगदीश चतुर्वेदी) कहानी में अतृप्त काम वासना के कारण ही मंजु को फिट्स पड़ते हैं जो अतृप्त वासना की विकृति कही जा सकती है । डाक्टर शारीरिक सुख प्रदान करके ही उसे सामान्य बना पाते हैं ।

इन कहानियों में अनेक वीभत्स रूपों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है । 'अपना मरना' (गंगाप्रसाद विमल) में पुरुष अपनी इच्छा पूर्ति बकरियों से तथा 'अनिश्चय' (लघनारायण सिंह) कहानी में कुत्तियों से करते ~~दिखलाई~~ दिखाये गये हैं । साथ ही अन्धे कोढ़ी और अपंग भिखारी की यौन चेतना भी विकृत रूप में 'दो दुःखों का एक सुख' (शैलेश मटियानी) कहानी में चित्रित हुई है । कहीं-कहीं यही प्रवृत्तियाँ अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए यौन-व्यापार को अपना माध्यम बनाती दृष्टिगोचर होती हैं । वैसे देखा जाय तो ये सामाजिक विकृतियाँ हैं जो पारिवारिक परिवेश को प्रायः प्रभावित नहीं करतीं । स्वार्थ पूर्ति से सम्बंधित विकृतियाँ सामाजिक पारिवारिक दोनों परिवेश को ~~प्रभावित~~

प्रभावित करती हैं । 'वेहरा' (शिवप्रसाद सिंह), 'गुनाह बेलज्जत' (मोहन राकेश), 'पाँस का दरिया' (कमलेश्वर) इसी प्रकार की कहानियाँ हैं । साथ ही बलात्कार व सौदे बाजी भी इसी कारण आती है । 'मरुस्थल' (मोहन राकेश) की नसीम अपने रूप यौवन की समाप्ति पर अपनी नौ वर्षीया बेटी इन्दु का सौदा करने पर विवश है तो 'कालाबाप-गोरा बाप' कहानी की जमीला अपनी सोलह वर्षीया बेटी और ग्यारह वर्षीया शहनाज को फिल्म व मॉडलिंग कार्यों में लगा कर परोक्ष रूप में उनके यौवन का सौदा करती है । अत: कहा जा सकता है कि सम्बंधों की स्थितियाँ एक प्रकार से जटिलतम बनती जा रही हैं, जिनका प्रभाव पारिवारिक परिवेश तथा परोक्ष रूप में समाज पर पूर्ण रूप से पड़ता है । पाश्चात्य जीवन दृष्टि व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकसित होने से अनेक दाम्पत्य सम्बंधों में भी अन्तर आया है, जिससे कहीं परिवार सुखी हो रहे हैं तो कहीं बिखर रहे हैं । इन पर स्वतंत्र रूप से विचार करना यहाँ आवश्यक है ।

५- दाम्पत्य जीवन की संवादिता और विसंवादिता :

दाम्पत्य जीवन में यौन-चेतना का महत्वपूर्ण स्थान है । इसके प्राबल्य व मर्यादाहीन होने पर ही पति-पत्नी के सम्बंधों में बिखराव आता है । आज के परिवेश में दाम्पत्य सम्बंध बिखर ही नहीं रहे हैं, अपितु वैवाहिक जीवन की अपेक्षाओं से दूर जा पड़े हैं । डॉ० राधाकृष्णन ने भी इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि दाम्पत्य जीवन का प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति के साथ-साथ आनन्दानुभूति भी होना चाहिए ।[१८] उनका विचार है कि व्यक्ति की कामेच्छा तब तक पाप नहीं है, जब तक कि वह सामाजिक, नैतिक बन्धनों के अनुकूल रहती है । दाम्पत्य सम्बंधों के अन्तर्गत पति-पत्नी के सम्बंधों का आधार समान हित होता है । एक दूसरे के अच्छे मित्र होने की भावना रहती

है । परन्तु बदलते परिवेश में नारी में एक ओर शिक्षित व अर्थार्जन में रत होकर वैयक्तिकता व अहंवादिता की भावना बढ़ती जा रही है तो दूसरी ओर वह परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने में भी एक सीमा तक अपना योगदान देती है। अर्थार्जन में रत नारी के भी दो रूप मिलते हैं। एक ओर अपनी शिक्षा व अस्तित्व के प्रति जागरूक होकर वह अर्थार्जन करती है, उसमें वैयक्तिकता प्रधान रहती है तो दूसरी ओर अनेक नारियों को विवश होकर अर्थार्जन में रत होना पड़ता है ।

'रबर बैंड' (अन्विता अग्रवाल) इसी प्रकार की कहानी है जहाँ बहन को कमाता देख उसका भाई समस्त पारिवारिक उत्तरदायित्व उस पर छोड़ कर चला जाता है । ऐसी स्थिति में किया गया अर्थार्जन मात्र कार्यालयों तक सीमित रह कर नारी की जिन्दगी को भी कार्यालयों तक सीमित कर देता है । 'जिन्दगी सात घंटे बाद की' तथा 'छुट्टी का दिन' कहानियाँ इसी स्थिति को उजागर करती दिखायी गयी हैं । दूसरी ओर 'सुहागिनें' (मोहन राकेश) कहानी की मनोरमा भी इसी अभिशाप से ग्रस्त है । अर्थार्जन से उसका मातृत्व व नारीत्व आहत होता है और वह पति से दूर रहती है । 'अभिशप्ता' (दीप्ति खंडेलवाल) की पात्र 'दी' अपने माँ-बाप के परिवार व खून के रिश्तों को दुर्दशा से बचाने के प्रयत्न में अर्थार्जन करती है तथा अपना घर, नहीं बसा पाती । 'नाव पर बैठे हुए' (हिमांशु जोशी) की वसुधा तथा 'दमन चक्र' (सुधा अरोड़ा) की दीपू भी अपने माँ-बाप, भाई-बहनों की चिन्ता में इतनी लीन रहती है कि अपने विवाह की कल्पना ही नहीं कर पाती । यदि कहीं यह कल्पना साकार रूप लेना चाहती है तब आर्थिक संकट रूपी दैत्य उसे निर्दयता से रोक देता है और वह संवेदना तथा अनुभूति के इस संघर्ष में पिसती रह जाती है । इस प्रकार नारी का अर्थार्जन कहीं उसे विवश करता है तो कहीं उसे सम्मान दिलाता है और वह आज पुरुष

की श्रेष्ठता को भी चुनौती देने लगती है। इनमें से अंतिम दो अवस्थाएँ पारिवारिक परिवेश के परिवर्तन को मानसिकता या मनोवैज्ञानिक कारणों द्वारा प्रभावित करते हैं, किन्तु ये तीनों ही स्थितियाँ स्त्री पुरुषों के अवमूल्यन की ओर ले जाती हैं। 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी में वृन्दा का घर में सम्मान तथा बड़े भाई सुबोध का अवमूल्यन इसी स्थिति का परिणाम है जहाँ नौकरी के अभाव में सुबोध की स्थिति घर के नौकर के समान बन जाती है। यहाँ तक कि उसकी प्रेमिका भी उसे त्याग देती है। पत्नी के रूप में अर्जिका नारी में आत्मविश्वास व अहं अधिक रहता है जिसके कारण वह पति की दासता स्वीकार नहीं करती तथा 'एक और जिन्दगी' जैसी कहानी में सम्बंध-विच्छेद कर लेती है। शशिप्रभाशास्त्री की 'बीच की कड़ियाँ', 'एक गाँठ' कहानियों में अर्जिका पत्नी का व्यवहार अपेक्षाकृत अनियंत्रित रहता है। पति को संदेह होता है, परन्तु संदेह, निर्दोष सिद्ध हो जाने पर पति का विश्वास वापस आ जाता है जबकि पत्नी अपने व्यवहार में परिवर्तन नहीं ला पाती उसमें अहंमन्यता अधिक प्रबल हो जाती है। 'दृष्टिदोष', 'स्वीकृति' (उषा प्रियंबदा) कहानियों में भी अर्थार्जन के कारण अहं व वैयक्तिकता का जन्म व परिवार से अलगाव अंकित हुआ है।

अर्थार्जन में रत नारी का दूसरा रूप तब मिलता है जब उसका पति अपेक्षाकृत कम अर्थार्जन करता है। 'यह भी कोई गीत है' (दीप्ति खंडेलवाल) कहानी की पत्नी अपने पति जो सामान्य प्रोफेसर हैं का अपमान कर देती है, जिससे वह आत्महत्या तक कर लेता है। 'बयान' कहानी में इसी मानसिकता को समाज के परिवर्तित दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास कमलेश्वर ने किया है। दूसरी ओर 'टूटना' (राजेन्द्र यादव), 'त्रिशंकु' (मन्नू भण्डारी) जैसी नारियाँ भी हैं जो अपना परिवार अपने अनुकूल चलाना चाहती हैं -

हैं असफलता में सम्बंध विच्छेद करती हैं। 'रिश्ता' (गिरिराज किशोर) कहानी की अशिक्षित विधवा यदि बर्तन माँज कर अर्थार्जन करती है तब 'तलाश' कहानी की विधवा शिक्षित होने पर अध्यापिका के पद पर कार्य करती है वहीं उसकी यौन चेतना प्रबल होती है और उसे अपने मृत पति की स्मृतियाँ शेष नहीं रहतीं। 'कमरा', कमरे, कमरा', 'बंद दराजों का साथ' (मन्नू भंडारी), सीधी रेखाओं के वृत्त' (महीपसिंह) आदि कहानियों की नारियाँ घर से बाहर नौकरी इस कारण करती हैं कि वे अपनी जिन्दगी अपने अनुसार चला सकें। ऐसी स्थिति में वे दूहरे-तिहरे उत्तरदायित्वों को निभाती हैं। कहीं वे अर्थार्जन मात्र से ही सन्तुष्ट हो जाती हैं तो कहीं उनके अहं की तुष्टि पुरुष को अपमानित करने पर होती हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि आज नारी का स्वरूप बदलता जा रहा है। उसका कारण चाहे अर्थार्जन, वैयक्तिकता अथवा बदलते सामाजिक परिवेश कोई भी रहा हो वह विवाह जैसे पवित्र बन्धन को एक निर्मोक की भाँति त्याग देना चाहती है। इस प्रकार उसके वैवाहिक जीवन में कहीं संवादिता दृष्टिगोचर होती है तो कहीं विसंवादिता। जहाँ उसकी मनोवृत्ति में अपेक्षाकृत वैयक्तिकता का भाव कम रहता है वहाँ परिवार में संवादिता दृष्टिगोचर होती है। ऐसे परिवार अधिक सुखद व मधुर दिखायी देते हैं। 'उलझन' (महीपसिंह), 'मैं हार गयी' (मन्नू भंडारी) कहानियों में संवादिता की स्थिति रहती है यहाँ नारी अपने परिवार के व्यक्तियों के प्रति मर्यादा में रहने व उन्हें सम्मान देने का भाव रखती है। 'दृष्टिदोष' कहानी में विसंवादिता के कारण ही संवादिता आ पाती है। एक ओर चन्दा पति को छोड़ देती है परन्तु मधुर के वार्तालाप से द्रवीभूत होकर साम्ब को अपना लेती है और संवादिता से परिवार, मधुरता से भरता जाता है। यह संवादिता

अहं की तुष्टि होने पर आती है तो 'कितना बड़ा झूठ' कहानी में इतर सम्बंधों की असफलता ही दाम्पत्य जीवन में संवादिता लाने में सहायक होती है ।

अनेक कहानियों की स्थिति प्राय: विपरीत, विसंवादिता की ही रहती है । 'एक और जिन्दगी', 'टूटना', 'त्रिशंकु' आदि कहानियाँ इसी स्थिति का साक्ष्य उपस्थित करती हैं जिनका विवेचन यथा स्थान किया जा चुका है । श्रीकान्त वर्मा के 'झाड़ी' कहानी संग्रह की अधिकांश कहानियों में विसंवादिता के दर्शन अनेक होते हैं । विसंवादिता का कारण एक ओर नारी के अर्थार्जन को माना जा सकता है तो दूसरी ओर इतर दाम्पत्य सम्बंधों को भी । इन बदलती मन: स्थितियों व सम्बंधों के कारण अनेक समस्याएँ भी उभर कर आती हैं जो दाम्पत्य जीवन को समग्र रूप में सामाजिक जीवन को प्रभावित करती हैं।

६- विवाहेतर तथा विवाहोत्तर सम्बंधों की समस्याएँ :

पति-पत्नी के सम्बंधों में परिवर्तन की दूसरी स्थिति तीसरे व चौथे व्यक्ति का उनके मध्य प्रवेश करना है । यह तीसरा व्यक्ति पति अथवा पत्नी किसी का भी हो सकता है । फलत: परिवार की शांति भंग होने लगती है । पति-पत्नी के सम्बंधों में जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं । कहीं-कहीं नारी इसे तर्क द्वारा समाज से स्वीकृत कराना चाहती है । 'ऊँचाई' (मन्नू भंडारी) की शिवानी का तर्क है कि पत्नी पर पत्नीत्व का आरोपण एक ही व्यक्ति तक अपने सम्बंध सीमित रखने का कारण पुरुष की एकाधिकार भावना का अनावश्यक प्रतिबंध है । वह इसे सामाजिक रूढ़ि मान कर अस्वीकार करती है । वह मन पति को तथा तन प्रेमी को दे देती है । 'देह की सीता' (दीप्ति खंडेलवाल)

में भी इसी प्रकार से पुरुषोचित एकाधिकार को आघात पहुँचाया गया है तथा बदलते परिवेश व मूल्यों को सामाजिक स्वीकृति प्रदान कराने का प्रयत्न किया है `----- शालिनी और रंजीत ने कभी स्पष्ट न कहा किन्तु एक अनकहा सा समझौता उनके बीच था । वे दोनों ही सैक्स को शरीर की माँग मानते थे, प्यार को मन की । दोनों माँग एक ही `सोर्स' से तृप्त हों, ऐसा आवश्यक नहीं और फिर इस सभ्य युग में रूपसी पत्नी को `डाँस फ्लोर' पर दूसरे पुरुष की बाँहों में बंधी देख कर पति की आँखों में विजय उभरती है, पराजय नहीं । और पत्नी ? -पति की बाँहों में बंधी दूसरी नारी को `माइन्ड' न करने का `कल्चर्ड एटीच्यूड' गर्व से पेश करती है । पति-पत्नी एक-दूसरे के व्यक्तिगत सुखों के ऐसे क्षणों को `माइन्ड' करें, यह आज के सुसंस्कृत युग की बात नहीं, कल के पिछड़े युग की बात है ---।`[१६]

अतः विवाह का बंधन दो प्राणियों के शारीरिक सम्बंधों तक ही सीमित रहे इसका खंडन `डरी हुई औरत' (रवीन्द्र कालिया) कहानी में भी किया गया है । यही कारण है कि आज नारी अपने परंपरागत रूप की नारी न रहकर नारी का विज्ञापन मात्र बनती जा रही है । रजनी पनिकर ने नारी की यही स्थिति जहाँ वह अपने व्यक्तित्व को निखारने की लालसा में उसे खो देती है `नारी नहीं, नारी का विज्ञापन' कहानी में अंकित की है । `आत्मघात' (दीप्ति खंडेलवाल) कहानी की मृणालिनी अपने पति को छोड़ मॉडलिंग का कार्य करती है और मालिक के बेटे से जुड़ जाती है । अनेक व्यक्तियों से सम्बंध रखना इन कहानियों में एक प्रकार से फैशन बन गया है । `अनलकी नम्बर' (मणिका मोहिनी) कहानी में प्रेमिका अपने प्रेमी से स्पष्ट कह देती है- ---- आपकी सूचना के लिए मैं आपको बता दूं कि आपके लिए मैं पहली या

दूसरी लड़की हो सकती हूँ पर आप मेरे लिए तेरहवें लड़के हैं।---- मुझे अफसोस रहेगा कि आप मुझे उनलकी नम्बर पर मिले।'[२०] 'उसका बिस्तर' (दूधनाथ सिंह) कहानी भी इसी मन:स्थिति की कहानी है। महीप सिंह कृत 'गन्ध' कहानी की शान्ता तथा 'ब्लाटिंग पेपर' कहानी की प्रीती नारियों की स्थितियाँ भी उपर्युक्त प्रकार की हो जाती है। अत: लगता है कि साठोत्तर कहानियों में यौनाचार को शारीरिक भूख से जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। 'युग पुत्री' (दीप्ति खंडेलवाल) कहानी की नायिका रचना कपूर इसकी अभिव्यक्ति '---- सेक्स इज टेबू फार मी --' कह कर करती है।[२१]

प्रस्तुत अध्याय के प्रतिपाद्य के दृष्टिकोण में साठोत्तर कहानियों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि परंपरागत नैतिक मूल्य विघटित होकर एक सीमा तक उन्मुक्तता धारण करते जा रहे हैं। इसी कारण अनेक कहानियों के नायक-नायिका एक दूसरे से अथवा अन्य व्यक्तियों से शारीरिक सम्बंध जैसी अनेक बातें स्पष्ट रूप से करते दिखाई देते हैं यहाँ तक कि साठोत्तरी कहानीकार भी उसका वर्णन खुले शब्दों में करता है'--- धीरे -धीरे उसने उसके ब्लाउज के बटन खोल डाले -- ।'[२२] प्रेम-व्यापार के लिए भी सेक्स का स्थूल प्रदर्शन दृष्टिगोचर होता है। यथा- '-- इस बार मैं उस पर चुम्बनों की झड़ी लगा दूँगा--- मैं छुप गया और आते ही उसे मौके का मजा देते हुए अपनी बाँहों में दबोच लिया--- ।'[२३] कहीं- कहीं नग्नता व अश्लीलता भी कहानीकार की कलम से अपना दामन बचा नहीं पाती- '--- मैं उसकी खाट पर लेट गया और उसे अपनी बाँहों के घेरे में ले लिया----- मुश्किल से दो-तीन मिनट लगे होंगे परन्तु वह फिर भी उसके ऊपर लेटा रहा ----'[२४]।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि साठोत्तर काल में

जीवन मूल्यों के संघर्ष का कारण पाश्चात्य जीवन दृष्टि, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, परिवेश की भिन्नता आदि माना जा सकता है। आर्थिक विषमता और बदलती सामाजिक चेतना ने इस परिवर्तन में अपना योगदान दिया है। पहले स्त्री- पुरुष के कार्य क्षेत्र भिन्न रहते थे। पत्नी का एकाधिकार घर के अन्दर रहता था तो पति का बाहर। परन्तु आज नारी कार्यालयों में पुरुषों के साथ कार्य करती हुई, उनसे एक पग आगे ही रहना चाहती है। अतः पर-पुरुषों से सम्बन्ध आना स्वाभाविक ही है। फलतः परंपरागत दाम्पत्य मूल्य उस रूप में न रहकर अनेक विवाहेतर तथा विवाहोत्तर सम्बंधों में परिवर्तित होकर नैतिक मूल्यों में विघटन का पथ प्रशस्त करते हैं। ये स्थितियाँ साठोत्तर कहानियों में खुल कर अंकित की गयी हैं। अतः कहा जा सकता है कि बदलते सम्बंधों का अन्तर केवल पारिवारिक सम्बंधों में ही परिवर्तन नहीं लाता अपितु परोक्ष रूप में सामाजिक चेतना को भी एक सीमा तक परिवर्तित करता है।

७- परिवर्तित सामाजिक चेतना :

पारिवारिक सम्बंधों का प्रभाव एक सीमा तक सामाजिक जीवन पर पड़ता है। ज्ञानरंजन कृत 'फेंस के इधर और उधर' कहानी का उल्लेख इस संदर्भ में किया जा सकता है। इस कहानी में दो परिवारों के माध्यम से आज के परिवेश व समाज को अनुस्थित रूप से अभिव्यक्त किया गया है। इसमें एक परिवार परंपरागत संस्कार वाला है तो दूसरा नवीन संस्कारों का प्रतिपादन करता हुआ आधुनिक परिवार है। फेंस उन दोनों को पृथक करती है। इन दोनों परिवारों के मध्य एक ऐसी संस्कारगत भिन्नता है जिसके कारण एक परिवार को प्रत्येक कार्य करते समय समाज का भय सताता रहता है जबकि दूसरा परिवार समाज के भय को न मानकर उसकी अवहेलना करता है। समाज के भय तथा

परंपरागत आस्थाओं के प्रति आस्थावान परिवार का पिता समस्त सामाजिक परिवेश के व्यक्तियों की आलोचना इस प्रकार करता है -`----- आज कल सभी ऐसे होते हैं --- पेट काट कर जिन्हें पाला पोसा उन्हीं के आंखों में दो बूंद आँसू नहीं -- -- पहले जमाने में लड़कियाँ गाँव की हद रोती थीं । जो नहीं रोती, उन्हें मार कर रूलाया जाता था, नहीं तो उनका जीवन ससुराल में कभी सुखी नहीं रह सकता था ---- आज वैसा नहीं है --- पुराना जमाना जा रहा है और आदमी का दिल मशीन हो गया है -- मशीन---`[25] वे पड़ोसी होते हुए भी आपस में सम्बंध नहीं रख पाते । पुराने संस्कार वाले परिवार की माँ को इसका दुःख है उसको यह ब्याह-शादी समझ में नहीं आयी --`--- न रोशन चौकी, न धूम-धड़ाका, न तो पकवान । ऐसी कंजूसी किस काम की । और फिर ऐसे मौके पर पड़ोसी को न पूछना यह वाह रे इन्सानियत । राम-राम---`[26] यही विशेषता आज महानगरीय सामाजिक जीवन में भी मिलती है । जहाँ साथ रहने वाले व्यक्ति भी एक दूसरे को नहीं पहचानते । अतः आज की वैयक्तिकता की चेतना से सामाजिक जीवन में परस्पर सहयोग की भावना लुप्त होती जा रही है । दूसरे शब्दों में व्यक्ति स्वातंत्र्य या अहंवादिता, ने सामाजिक भावना पर कुठाराघात किया है । साठोत्तर कहानियाँ इसी अन्तर्विरोध का प्रदर्शन करती हैं । इनमें आज के सामाजिक जीवन के यथार्थ की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं ।

आज आधुनिकता, पाश्चात्य सभ्यता, शिक्षा , वैज्ञानिकता, आदि के कारण शनैः शनैः सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आने लगा है जिसका सम्बंध मानव मूल्यों से है । रामप्रसाद मिश्र ने इस परिवर्तित सामाजिक चेतना का वर्णन `एक पल और प्यार का अन्त' कहानी में इस प्रकार किया है ।`----स्वतंत्र भारत की प्रगतिशीलता और समाजवाद के दर्शन यदि कहीं हो सकते हैं तो दिल्ली

की बस्ती तक में, बड़े-छोटे, विद्वान-मूर्ख, धनवान-निर्धन, सुन्दर-असुन्दर, युवा-वृद्ध, नर-नारी, सब एक-दूसरे पर चढ़े, इज्जत की पुरानी सड़ियल परिभाषाओं को ठुकराते, आत्मसम्मान की मृत प्रतिक्रियावादिता को लतियाते, यौन-रहस्य के रूढ़ प्राच्य सिद्धान्त को जुतियाते---- ।"[२७] पूर्ववर्ती अध्यायों के विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य काल में मानव मूल्यों का ह्रास हुआ है । अतः स्पष्ट है कि सामाजिक संगठन व सामाजिक चिन्तन में परिवर्तन आने लगा है । समाज का परंपरागत रूप अब बदलने लगा है, अथवा बदलने की स्थिति में आ रहा है । अनेक साठोत्तर कहानियाँ इसकी पुष्टि करती हैं । इनमें कुछ जगह पर प्राचीन मान्यताओं के प्रति सम्मानभाव दिखाया गया है परन्तु बदलता परिवेश व नयी पीढ़ी उसे स्वीकार नहीं कर पाती । यही संघर्ष व्यक्ति का परिवार का न होकर संपूर्ण समाज का दृष्टिगोचर होता है । सामाजिकता के नाम पर पहले व्यक्ति अपने को संगठित करता था परन्तु आज वह सामाजिकता से असम्पृक्त होकर स्वयं के प्रति अपेक्षाकृत अधिक जागरूक दृष्टिगोचर होता है । राजनैतिक परिस्थितियाँ प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली तथा समानतावाद के कारण सामाजिक भावना बदलती जा रही है, जिसका प्रभाव समाजगत मूल्यों पर पड़ा है । सामाजिक मूल्यों का परिवर्तित होना ही सामाजिक जीवन में नये दृष्टिकोण उत्पन्न कर उसके स्वरूप को बदलने में सहायक होता है । इन कहानियों में अनेक मूल्य बदलती स्थिति में दृष्टिगोचर होते हैं, तो कुछ मूल्य परम्परा से संघर्ष करते भी दृष्टिगोचर होते हैं ।

८-परम्परागत आस्थाओं के प्रति विद्रोह :

परंपरा अविरल रूप से व्यक्ति के संस्कारों से जुड़ी रहती है । अतः कोई भी व्यक्ति परंपरा से पृथक नहीं माना जा सकता । व्यक्ति का परंपरागत आस्थाओं के प्रति जब दृष्टिकोण बदलने लगता है तब वह उसके प्रति विद्रोह करता

अतः परंपरागत गतिशील बन जाती है। कुछ परम्परागत आस्थाएँ अपने पुराने रूप में रूढ़ियाँ कहलाने लगती हैं, जबकि अन्य आस्थाएँ सम-सामयिक जीवन के अनुरूप संवेदनशील बन कर परिवर्तित होने लगती हैं। इसी परिवर्तित चेतना से आन्तरिक स्वरूप के अनुरूप व्यक्ति अपने को सक्रिय व जागरूक बनाता है। यही परिवर्तन जब समाज में होने लगते हैं, तब उन्हीं के अनुसार सामाजिक संस्कार व मूल्य बदलने लगते हैं। फलस्वरूप समाज का नया स्वरूप युगीन संस्कारों का अनुसरण कर परम्परागत आस्थाओं को पीछे छोड़ देता है। परम्परागत आस्थाओं व मान्यताओं के प्रति साठोत्तर कहानियों में गहरा आक्रोश व विद्रोह दृष्टिगोचर होता है। जिस पर पूर्ववर्ती पृष्ठों में विस्तार से विचार किया जा चुका है। यह विद्रोह किसी एक व्यक्ति का न होकर संपूर्ण समाज का माना जा सकता है। इसी विद्रोह के कारण परम्परागत समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों के स्थान पर अनेक नये रीति-रिवाज-यथा- प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, पुनर्विवाह आदि सामाजिक मान्यता प्राप्त करते जा रहे हैं। परम्परागत आस्थाओं के प्रति विद्रोह की स्थिति को पूर्ववर्ती पृष्ठों में विवेचित सन्दर्भों में लक्ष्य किया जा सकता है। अतः यहाँ उनकी पुनरावृत्ति आवश्यक प्रतीत नहीं होती।

निष्कर्ष :

सामाजिक सन्दर्भ में पारिवारिक परिवेश को रूपायित करने वाली साठोत्तर कहानियों का जो विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई होने के कारण पारिवारिक परिवेश के अन्तरंग को प्रभावित करती है। वैयक्तिकता, यौन चेतना, अर्थ व्यवस्था, पाश्चात्य प्रभाव, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा संयुक्त परिवार के संघर्षों का प्रभाव जहाँ परिवार पर पड़ता है वहाँ सामाजिक

जीवन के प्रभाव की अनिवार्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इन प्रभावों से सामाजिक जीवन की अनेक मान्यताओं, परंपराओं के मध्य व्यक्ति तथा परिवार का द्वन्द्व प्रारंभ हो जाता है। परिणाम स्वरूप एक ओर परंपरा से चली आनेवाली सामाजिक रूढ़ियाँ टूटती या ध्वस्त होती हैं तो दूसरी ओर अनेक नयी मान्यताएँ सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करते हुए अपना अस्तित्व धारण करती जाती हैं।

साठोत्तर कहानियों में आज की परिस्थितियों के अनुरूप सामाजिक बोध का चित्रण हुआ है। आलोच्य काल में आर्थिक संकट तज्जन्य निराशा, बेकारी, भ्रष्टाचार तथा जीवन की अनेक विसंगतियों से भी सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आया है। व्यक्ति उपर्युक्त संकटों से त्रस्त होकर नये व्यवहार करता है, जिससे उसके सम्बंधों व परिवार के स्वरूप में अन्तर आया है। इसी कारण संयुक्त परिवार प्रणाली, एकाकी परिवारों में परिवर्तित होने लगी तथा एकाकी परिवार भी सुगठित स्थिति में नहीं दिखायी पड़ते।

समग्रतया मूल्यांकन द्वारा यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग मूल्यों के ह्रास का युग है। अतः पारिवारिक स्तर पर अनेक विघटन की प्रवृत्तियाँ इसमें दृष्टिगोचर होती हैं। एक ओर पुरुष के अहंकार व स्वामित्व की भावना ने उसे एकाकी बनाकर परिवार से असंलग्न करने का प्रयत्न किया है, तो दूसरी ओर नारी जागरण ने नारी को, नारी सुलभ गुणों से वंचित कर अनेक परंपरागत आदर्शों से अलग किया है। अतः कहा जा सकता है कि साठोत्तर कहानियों में परम्परा का विद्रोह, व्यक्ति, परिवार व समाज के प्रत्येक स्तर पर हुआ है। यह उल्लेखनीय है कि जहाँ परंपरागत शाश्वत मूल्यों का ह्रास हुआ है वहीं परंपरागत सम्बंधों व मान्यताओं में भी संक्रमण हुआ है।

फलत: दाम्पत्य जीवन के मध्य भी दूरियाँ बढ़ने लगीं। परस्पर गहराई तथा एक दूसरे के प्रति आत्मीयता की अनुभूति प्राय: समाप्त होने लगी है। इस प्रकार सामाजिक जीवन की गठन आन्दोलित तथा उसके प्रति दायित्वों में भी दरार पड़ने लगी है। सामाजिक वस्तुस्थिति के सन्दर्भ में विचार किया जाय तो आलोच्य कहानियों में ऐसी विघटनकारी प्रवृत्तियों के निरूपण का प्रयास अधिक किया है। सम्भवत: नई पीढ़ी के पाठकों की रुचि को परितोष उसी के द्वारा देना उन्हें अधिक सुविधाजनक प्रतीत हुआ। यह कहना कठिन है कि यह आकलन आज के भारतीय समाज के अधिकांश भाग या सर्वांश का प्रतिनिधित्व करता है। यह अवश्य है कि मध्यम वर्ग की बदलती हुई चेतना का सशक्त रूपायन उनमें लक्षित होता है।

सन्दर्भ- संकेत :

१- विवेकी राय- बेटे की बिक्री- बेटे की बिक्री- कहानी संग्रह, पृ० १०६

२- विवेकी राय-विद्रोह- बेटे की बिक्री- कहानी संग्रह-पृष्ठ-८९

३- उषा प्रियंवदा- कच्चे धागे- जिन्दगी और गुलाब के फूल-कहानी संग्रह, पृष्ठ-७५

४- ज्ञानरंजन -सम्बंध-यात्रा-कहानी संग्रह ।

५- विजयचौहान-मुक्ति- मिजाज-कहानी संग्रह ।

६- गिरिराज किशोर-रिश्ता-अणिमा सातवें दशक का हिन्दी कहानी विशेषांक, जनवरी -१९६७

७- कामतानाथ-अंत्येष्टि-सारिका पत्रिका दिसंबर १९७१

८- ज्ञानरंजन-सम्बंध- फेंस के इधर और उधर-कहानी संग्रह-पृष्ठ-११५

९- दूधनाथ सिंह- सुखान्त- सुखान्त-कहानी संग्रह ।

१०- कृष्ण बलदेव वैद- 'अगर मैं आज----' मेरा दुश्मन- कहानी संग्रह ।

११- कामतानाथ-पूर्वार्ध-सारिका पत्रिका- दिसम्बर १९७१

१२- ज्ञानरंजन -पिता- फेंस के इधर और उधर- कहानी संग्रह ।

१३- ~~ज्ञानरंजन~~ रमेश बक्षी- पिता दर पिता- पिता दर पिता-कहानी संग्रह ।

१४- मन्नू भंडारी- धर्मयुग-२ अप्रैल से ८ अप्रैल १९७८,पृष्ठ-५१

१५- दीप्ति खंडेलवाल-'वह तीसरा' कहानी संग्रह की भूमिका से उद्धृत कथन ।

१६- दीप्ति खंडेलवाल- सन्धिपत्र- वह तीसरा- कहानी संग्रह ।

१७- शशिप्रभा शास्त्री- संघ- कहानी पत्रिका- अप्रैल-१९७४

18- It is not right to think that a man and a woman should not take phycial delight in each other for its own sake and should do so only for the sake of children. It is wrong to think that sexual desire itself is a evil and virtue, consists in dominating and suppressing it on Principle.

- Dr.S.Radhakrishnan, Religion and Society. Page-189-190.

१९- दीप्ति खंडेलवाल- देह की पीड़ा- कड़वे सच-कहानी संग्रह-पृष्ठ-९२-९३

२०- मणिका मोहिनी- अनकही नम्बर- कहानी पत्रिका- जून १९७३ ग्रीष्मांक।

२१- दीप्ति खंडेलवाल- दुग पुत्री- नारी-मन-कहानी संग्रह, पृष्ठ-८८

२२- श्रीकान्त वर्मा- खेल का मैदान- संवाद- कहानी संग्रह, पृष्ठ-६४

२३- ज्ञानरंजन -दाम्पत्य- यात्रा- कहानी संग्रह- पृष्ठ-३५

२४- गिरिराज किशोर- रिश्ता- सारिका का सातवें दशक का हिन्दी कहानी विशेषांक- जनवरी १९६७

२५- ज्ञानरंजन -फैंस के इधर और उधर- फैंस के इधर और उधर- कहानी संग्रह- पृष्ठ-६९

२६- उपरिवत्- पृष्ठ-७०

२७- रामप्रसाद मिश्र-हल्क एक और प्यार का अन्त- भिखारी की मौत, पृष्ठ-४२